Volume-3, No. I, Feb-2016, pp. 90-92

'यशोधरामहाकाव्यम्' में व्याप्त नारी भावना

श्री रामपाल, शोधार्थी
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय अलीगढ़ उत्तर प्रदेश भारत।

सार– यशोधरामहाकाव्य संस्कृत साहित्य का जाज्वल्यमान तत्प स्वर्ण है, जिसकी प्रभा समय के प्रवाह से और भी अधिक बढ़ती जाती है। वह बड़ी ही मंगलमयी घड़ी थी जब कवि पं0 परीक्षित शर्मा ने इस अमर काव्य की रचना की। बाह्य प्रकृति की मनोरम झाँकी प्रस्तुत करने में तथा अन्तस्तल में सन्तप्त उदय लेने वाले भावों के चित्रण में यह काव्य अपनी तुलना नहीं रखता। यशोधरा काव्य में हृदयपक्ष का प्राधान्य है। कवि अपने पात्रों के अन्तस्तल में प्रवेश करता है, उनकी अवस्था विशेष में होने वाली मानस वृतियों को विश्लेषण करता है तथा उचित पदन्यास के द्वारा उसकी अभिव्यक्ति करता है।

मुख्य शब्द– नारी का जननी रूप, मन्थराकृति, मानिनी यशोधरा।

गौतमबुद्ध के वियोग में यशोधरा के हार्दिक भावों की रम्य अभिव्यक्ति परीक्षित शर्मा की ललित लेखनी का चमत्कार है। गौतमबुद्ध के महाभिनिष्क्रमण के अनन्तर जो भाव यशोधरा के हृदय में उद्वेलित हुए, वह वास्तव में नारी जाति को झकझौर देने वाले हैं। जिनमें नारी जाति का वास्तविक स्वरूप पढ़ा, देखा, समझा जा सकता है। इस वियोगमयी वातावरण में नारी के दो रूप पत्नी और जननी रूप में उभरकर आते हैं। उसके ये दोनों रूप ही आदर्श और भव्य हैं।

नारी का पत्नी रूप–पत्नी रूप में यशोधरा के द्विविध व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति है– अनुरागिनी यशोधरा, मानिनी यशोधरा। यद्यपि नारी के इन दोनों रूपों में नितान्त विरोधाभास है। किन्तु कवि ने यशोधरा के इन दोनों रूपों में जो कलात्मक मिश्रण दिखाया है, वह निस्संदेह सहृदय द्वारा स्तुत्य है। यशोधरा एक आदर्श पत्नी है जो अपने पति को प्राणों से भी अधिक स्नेह करती है। अपने आतिशय्य प्रेम के कारण, वह गौतम और अपने को ऐक्य समझती है।किन्तु जब गौतम महाभिनिष्क्रमण के समय सिद्धि निमित्त घर से पलायन करते हैं तो उसके कुसुम सदृश कोमल हृदय पर वज्रपात हो जाता है। वह स्वप्न की अवस्था में ही बड़बड़ा पड़ती हैं। यथा –

महर्हराय्यागत–मन्थराकृतिः यशोधरा गर्भवती प्रकामम्।
असेत–संतान–मनोरथेव गर्भालसायास–भरेण मूर्तिः।।
प्रसूति–वेलाभिकाङ्क्षिणी सा प्रमोद–संदोहल–दोलिनी मृशम।
कामं स्वपन्ती भयदायिनं तदा स्वप्नत्रयं दृष्टवती सुयोगिनी।।
आलोक्य भीता वृषभेश्वरं तुरं सास्ना–ककुद–शृैंमहोग्र रूपिणम्।
हुङ्कार–वेगात् दलितान्तरालंक तत्पत्तन–श्रीचय–मुष्ट धानिवम्।।
विडौजलोके चटुला पताकिनी परैः विभग्नेवभिया विलोकिता।
तदीय देशें रमणीय केतनं निधाययात्तं खल–मण्डलैः तदा।।
तस्याः कराभ्यां गलितानि भूमौ अनेक वर्णाचिज–कड्ढणानि।
भग्नानि वेगात् शतधा कृतानि तथेति दुःस्वप्नवती वभूव।।
उत्थाय तूर्ण विकृतास्य–लास्या स्वेद–प्रसिक्तेन मुखाम्बुजेन।
अकिंचानज्ञा पटु–शुष्क–वक्त्रा किमेतदासीदिति वेपमाना।।
वैक्लव्य–भावावृत–गुर्विणी सा प्रभुं स्वभतरिममुं नरेन्द्रम्।
आसाद्यं सर्व चरितं विदृष्टं न्यवेदयत् भीत–परीत–चित्त।।
श्रुत्वा त्वदीया व्यथितां कथां च प्रसान्त्वयन् तां नृपतिर्ब भाण।
यशोधरे में हृदयं द्वितीयं न किञ्चिदत्रास्ति भयस्य हेतुः।।
इति प्रियं चुम्बनमाचरन् तां नीत्वा स्वकीये मृदृ–बाहु मध्ये।
ममार्ज हस्ताग्ररू हैः पतन्तं कवोष्ण–बाष्पं समयानुचारी।।
उवास तस्मिन् मृदु–बाहु–बन्धने यशोधरा–भीषण–भाव–संकुला।
शिरोधरां स्कन्ध तले निवेश्य लते व भूजं बहुगाढ़ वेष्ठिता।।
तथा परिष्वङ्न्य विलग्न चित्तां राजां वभाणे दमतीब शान्तम्।
यशोधरे प्राणसमे भजस्व निर्भीक–भावेन लतान्त–शय्याम्।।
सा लालिता प्रेम–रस स्वरूपा विकम्पिता दैन्यपरीत–भावा।

लतान्त–शुक्लाम्बर–तुल्य देशे सुष्वाप गाढं बहु–वेदनान्ता।।[1]

यह अनुरागिनी नारी अपने व्यक्तित्व को पति के व्यक्तित्व से पृथक् स्वीकार नहीं करती। जब सारथि छन्दक गौतम को वन छोड़कर वापस आकर सन्देश श्रवण कराता है किविचित्र भावों के साथ गौतम ने घोड़े से उत्तरकर महोज्ज्वल राजा ने चन्न से इन्द्र के समान वाक्य गरजकर कहा– हे चन्न मुझे तेज धारवाली कृपाण दो जिससे मैं शिर के सारे बाल काट दूँ और मैं सन्यास मार्गी हो जाऊँ। चन्न ने कोश से निकालकर पैनी कटार दी। इस प्रकार चन्न ने राजानुमति को पूर्ण किया। राजा ने अपना मुण्डन श्रेष्ठ माली की भाँति कर दिया जो तमोगुण वर्धक थे। इस प्रकार पाप समूह जाल काटा।

पत्यानुकूल यशोधरा भी अपने केशों को काटकर साध्वी जीवन व्यतीत करने लगी'

विचित्र भावैः तुरगात् स राजा विराजमानः सहसा वतीर्य।
चन्नं समालोक्य महोज्ज्वलः सन् पप्रच्छ दम्भोलिसमानवाक्यैः।।
रे चन्न! में देहिकृपाण–धारां तया मदीयान् प्रचुरान् शिरोजान।
विच्छिद्य नूनं विततोत्तमाँ संन्यासिनो मार्गगतो भवेयम्।।
विकम्पमानः स्वकृपाण–धारां चकर्ष तस्मात् बहुधर्म–गात्रः।
कोशात् लसन्तीं सित–कान्ति–दीप्तां तुरीय–राजानुमतिं विकुर्वन्।।
राजा कृपाणचल–रश्मि–दीप्त्या चिच्छेद सर्वं स्वशिरोज भारम्।
नवांशुमालीकृत–तामसीव धनीभवत् पाप–समूह–जालम्।।
यद्यत्कृतं यत्क्रियते च गत्वा विसर्जितं दस्तु–चयं मदीयम्।
प्रयच्छ सत्यं जनकाय चन्न! गच्छाम्यहं सान्त्वनामावहस्व।।[2]

यशोधरा के कर्तव्यता से स्पष्ट है कि वह आदर्श नारी है। भारतीय नारी के लिए तो उसका पति ही भगवान रहा है। वह युगों से अपने पति को भगवान समझकर उसकी आज्ञा का पालन करती आयी हैं और उसकी आज्ञा पालन से ही अपने कृतकार्य मानती रही है। उसने सदैव से त्याग किया और विश्वमंगल के लिए उसने सर्वदा ही कर्त्तव्य वेदी पर अपनी बलि दी है। यशोधरा इसी परम्परा की नारी है जो पति के अपूर्ण जीवन को पूर्ण समझने में नारी धर्म का चरमोत्कर्ष मानती है। यशोधरा का आदर्शतत्व त्रेतायुग की अनुरागिनी सीता के धवल चरित्र को एक बार फिर तरोताजा कर देता है–

चरणेनापि सव्येन न स्पृशेयं निशाचरम्।
रावणं किं पुनरहं कामयेयं विगर्हितम्।।[3]
त्वया तु नरशार्दूल क्रोधमेवानुवर्तता।
लघुनेव मनुष्येण स्त्रीत्वमेव पुरुस्कृतम्।।
न प्रमाणीकृतः पाणिर्बाल्ये बालेन पीडितः।
मम भक्तिश्च शीलं च सर्वं ते पृष्ठतः कृतम्।।[4]

यशोधरा में भारतीय नारी का स्वाभिमान कूट–कूट कर भरा हुआ है। वस्तुतः यशोधरा के जीवन में हमारे घर की वधुओं के चरित्र की मर्यादा अंकित है। एक आलोचक का कहना है कि यदि नारीत्व की निर्बलता में भी सबलता का आधान, उसकी कोमलता में भी कठोरता का संधान, उसके आत्म समर्पण में भी आत्माभिमान का विधान कवि को इष्ट है तो इस दृष्टि से यशोधरा के चित्रण में मैथिलीशरण गुप्त कृत उर्मिला के चित्रण की अपेक्षा अधिक कलात्मकता है।

मानिनी यशोधरा –

अमृतपुत्र बुद्ध ने नारी को सिद्धि मार्ग की बाधा मानकर मानो सम्पूर्ण नारीत्व पर एक कलंक का टीका लगाया, किन्तु यशोधरा वह नारी है जो कलंक के टीके को अपने माथे पर हँसी–खुशी लगाये रही। वह यह कबूल नहीं कर सकती कि केवल पुरुष ही मोक्ष का अधिकारी है और न यही कि मोक्ष गार्हस्थ्य के परे जंगल में ही मिला करता है। अपनी इन्हीं भावनाओं के कारण उसके मन में एक प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है और इसी प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप वह अपनी हृदयगत आशाओं तथा आकांक्षाओं को दग्ध कर नारी के गौरव को अक्षुण्ण बनाए रखना चाहती है। हमारा गार्हस्थ्य जीवन भगवत्प्राप्ति का एक सोपान मात्र है। भगवान की प्राप्ति अनुराग से सुलभ है। भक्ति से ही उस प्रियतम के पाने के लिए एक सुगम राजमार्ग है। कहने में यह जितना सरल है, करने में यह उतना ही कठिन है। प्रेमतत्व एक दुरूह तत्व है, जिसे यथार्थतः जानना उतना कठिन नहीं है जितना उसका आचरण में लाना। गार्हस्थ्य जीवन में हमें इसी प्रेम तत्व की साधना सिखलायी जाती है, यह ठीक है कि गौतम सिद्धि का उपलब्धि के लिये गये है किन्तु उसे सिद्धि मार्ग की बाधा समक्षकर छोड़ देना उसके साथ अन्याय है। जिस नारी ने सुख–दुख,हर्ष–विवाद, मंगल–अमंगल, संयोग–वियोग, राग–रोग, जन्ममरण आदि में साथ दिया है उसी के प्रति अविश्वास। यह अविश्वास यशोधरा के साथ नहीं, वरन् उसके नारीत्व के साथ है। इससे वह अपने नारीत्व को अपमानित अनुभव करती है और गौतम के इस उपेक्षाभाव से उसका मान जागृत हो उठता है। मान के जागरण की स्थिति में वह कुसुमादपि सुकुमारी वज्रादपि कठोर बनना चाहती है। वह अपने हृदय की सभी आकांक्षाओं और अभिलाषाओं की बलि चढ़ाकर नारी की गौरव–गरिमा को अक्षुण्ण बनाये

रखने का प्रण करती है और इसके लिए वह एक शर्त रखती है कि उसके पति की सिद्धि के समग्र सृष्टि का कोना–कोना जगमगा जाय, फिर भी वह निश्चेष्ट, निश्चल एवं एकाग्र भाव से किसी कोने में अपनी कथा आप सीती रहेगी और संसार यह देखेगा कि यशोधरा अपने मान के समक्ष अमृत को हेय समझती है। किन्तु उसका मान पतिव्रता नारी का मान है जिसमें प्रतिशोध की भावना नहीं, वरन् अपने प्रियतम के योगक्षेम की वेदी पर अपना सर्वस्व स्वाहा कर देने की क्षमता है। यशोधरा सारे विश्व को यह दिखा देना चाहती है कि उसे पति की दृष्टि में नारी का जो वासनात्मक है उसमें कल्याण मार्ग को प्रशस्त करने की क्षमता है। विश्व को मुक्ति का वरदान देने वाले गौतम की भुवनव्यापी कीर्ति में गृह–साधना का भी योग रहा है। वह भली–भाँति जानती है कि अर्द्धागिनी होने के नाते उसके पति की उपलब्धि में उसका भी योगदान है। यशोधरा का गर्विणी रूप तब और स्पष्ट होता है जब गौतम का पता चलता है, और महाप्रजावती तथा शुद्धोधन उससे गौतम के पास चलने को कहते हैं। लेकिन वह चलने से इन्कार कर देती है। यशोधरा अपने आराध्य देव के दर्शन करने नहीं जाती, स्वयं उसके आराध्य देव को आना पडेगा है। वे सिद्धार्थ गौतमबुद्ध होकर लौटे है, आज उसके जीवन देवता का पुनरागमन हो रहा है। उस समय गोपा के हृदय का स्नेह गौतम की ओर जाने को मचल उठता है पर वह मान की टेक पर टिकी रही। आज उसके जीवन की कठोरतम परीक्षा का अवसर है। पुनः प्राणप्रियतम के दर्शन को मन मचल रहा है तो दूसरी ओर मान की आन है। अन्ततः उसकी यह साधना भी पूर्ण होती है और स्वयं भगवान को उसके द्वार पर पधारना पड़ता है। उसके भगवान अपनी भूल के लिए पश्चाताप करते हैं और उसकी प्रशंसा कर मान की रक्षा करते हैं। भगवान के मुख से अपनी प्रशंसा का श्रवण कर यशोधरा अपने को कृतकृत्य अनुभव करती है। आज उसके जीवन का पुनीततम दिन है, जो उसके आराध्य देव ने उसे इतना सम्मान प्रदान किया है। दुखियारी क्या करती, उसके द्वार पर भव–भव के भगवान याचकरूप में खड़े है; और उसके पास भिक्षा देने के लिए क्या है? बहुत सोच–विचार के उपरान्त उसे एक युक्ति सूझती है और वह अपने अचंल के लाल राहुल को याचक के श्री चरणों में निवेदित कर देती है। इससे अधिक उपयुक्त भिक्षा और हो भी क्या सकती थी।

तांभामिनी राहुल–पुत्रकं च बुद्धोदिदेशाखि–बौ0–धर्मम्।

सन्दर्भ

1. यशोधरा महाकाव्यम् – 7/34
2. वही, 10/31, 32, 33, 34, 35
3. वाल्मीकि रामायण – 5/26/10

सर्वोऽपि भक्ल्या विजजाप सूक्तं गच्छामि बुद्धं शरणं महान्तम्

गच्छामि धर्म निरतं धरण्यां गच्छामि संघंमनसा च सिद्धये।

वदामि सत्यं मम देश–भूत्यै अहिंसया सर्वमताभिमानम्।।[5]

धन्य है वह नारी जो याचक को अपने जीवन की अमूल्य निधि सौंप देती है। बुद्ध और गोपा के मिलन पर किसी ने लिखा है कवि ने गर्विणी गोपा और 'शुद्ध–बुद्ध भगवान' के इस अपूर्व सम्मिलन द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि करूणाजनक परिस्थिति में भी स्वाभिमान की रक्षा की जा सकती है और प्रेम के राज्य में विजय और पराजय की केवल सापेक्ष सार्थकता है। गोपा की विजय में गोपा की पराजय भी निहित है और बुद्ध भगवान की विजय थी।

नारी का जननी रूप–नारी अपने पति के प्रति कितनी भी अनुरागमयी क्यों न हो, किन्तु उसके आदर्श की चरम परिणति उसके जननी होने में हैं। यदि नारी ने अपना यह कर्त्तव्य पूर्ण न किया तो उसका जीवन अपूर्ण है। यशोधरा ने अपने इस कर्त्तव्य को बड़ी निष्ठा के साथ निर्वाह किया। पति के द्वारा परित्यक्त होने पर भी उसने राहुल का पालन पोषण किया, साथ ही स्वयं ने साध्वी जीवन व्यतीत किया। इस प्रकार हम देखते हैं कि नारी–जीवन के समग्र आदर्श व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति यशोधरा में है। यहाँ वह पति–अनुरक्ता है, मानिनी है और जननी का आदर्श रूप। आदर्शों का प्रतिष्ठान भूत उसका महिमामय व्यक्तित्व पाठक को बरबस अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है। प्रियतमा के कमनीय वचन के समान शब्द, जो रसमय होने से शीघ्र ही हृदय पर प्रभाव डालते हैं। उसका उपदेश इतना प्रभावशाली होता है कि आप उसे मानने के लिए बाध्य हो जाते है– जैसे रस प्रधान काव्य

भणितं मणितं च योषितां परमानन्दमयं रसात्मनाम्।
मधुराधार–सारि–वाचकं सहसाकर्ण्य समेहि भूयते।।[6]

निष्कर्ष–इस प्रकार साहित्य में नारी का प्रभाव विशेष रूप से अभिव्यक्त माना गया है। वह शक्ति की मूर्ति है, प्रेम का अवतार है, अनुराग की वाटिका है, रस का उत्स है, हृदय–कली का विकसित करने वाले प्रभाव वायु का हिलोरा है, मानस में आनन्द लहरी उठाने वाला मन्द–मन्द प्रवाहित पवन है। अन्ततः संस्कृत साहित्य ने नारी की शक्ति को पहचाना है और उसे उचित रूप से अभिव्यक्त किया है।

4. उत्तररामचरितम!
5. वही, 20/39, 40
6. वही – 13/15